मनुष्य बनो

मार्च
१९८६

3/86

वा०
१०-।

शरणागति

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

संरक्षक

दयाल फकीरचन्दजी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचारपत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क – राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । उत्तर प्रदेश
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता		भारतीय
पता		शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनांक १५ सित०, १९८५

सुधा मित्तल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

R. S.

ओ३म पूर्णमदः पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ३५	फाल्गुन संवत २०४२ वि०	अङ्क ६

शब्द

होली खेलूँ रंग भरी ॥ टेक ॥

आलस नींद प्रमाद को त्यागूँ, चित गुरु चरन धरी ।
सुमिरन भजन ध्यान घट भीतर, तन मन सुध बिसरी ॥
जग चिंता की धूर उड़ाई, माया देख मरी ।
प्रेम गुलाल मला जब मुख पर, काल की गति बिगरी ॥ ,,
अनहद धुन का हुआ दिवाना, मोह की बिपत हरी ।
थिक थिक थिक थिक थेई थेई थेई । नाचत सुरत परी ॥ ,,
जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय ।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहीं खाये ।
राधा स्वामी ऐसी खेलाई होरी, चरन शरन में लई ।
दुबिधा द्वन्द विकार नमाया, रहा न प्रान रई ॥
सत तक रूप रंग की रेखा, आगे चढ़कर कुछ नहीं देखा ।
जो कोई इतने ऊँचे चढ़े, रूप रंग रेखा से टरे ॥ ,,

नर-नारी

संत मुन्शीराम भगत

गतांक से आगे

आशाएं और कामनाएं उठने में देर नहीं लगतीं । किसी के वश में नहीं । उठने पर आशा ग्रस्त को वश में कर लेती हैं । और उसकी शक्ति क्षीण कर देती हैं ।

हजूर परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज वासनाओं के विषय में अपनी एक "कर्म भोग" नामी पुस्तक में पृष्ठ ६२ पर लिखते हैं — "हमारी पृथ्वी यद्यपि मिट्टी तत्व है किन्तु यह है वास्तव में सूर्य का दूसरा रूप । इसी प्रकार जितनी भी प्रकृति कारण, सूक्ष्म अथवा स्थूल है, सब की उत्पत्ति किसी ऐसे प्रकाश और शब्द से हुई है जिसको मैंने लोक लोकान्तर का आधार समझा है । क्या पता सन्त उसको सतपद कहते हों । शास्त्रकार सत्यम् कहते हों । मुझे नहीं पता । मेरा अनुभव है कि प्रत्येक प्रकार की स्थूल प्रकृति जिसमें हमारी रचना विद्यमान है और सूक्ष्म प्रकृति जिस में हमारी प्रत्येक प्रकार की वासनाएं और प्रकृति की वासनाएं विद्यमान हैं और कारण प्रकृति जो हमारी आत्मा है सन्त या शास्त्र जिसको काल या सोहं पुरुष कहते हैं जो अति ही निर्मल है ।"

जिस प्रकाश का इशारा हजूर परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज ने किया है मेरी तुच्छ बुद्धि में वही कर्त्ता पुरुष की हकुमत का स्रोत है । वासना क्योंकि स्त्रीलिंग शब्द है, सुरत को इस संसार में फंसाए रखने के लिए उसका एक रूप है, क्योंकि उसके बगैर यह सारी सृष्टि अधूरी है । सन्तमत में भी लिखा हुआ है कि जब सारी सृष्टि काल ने रच दी तो यह अधूरी थी—जड़ थी, तो काल सुरत को मांग कर लाया था । सुरत के आने पर इस जड़

सृष्टि में कुछ चेतना आ जाती है और यहां का काम काज चलाने के लिए वासना पैदा होती है। वो वासना हर नर और नारी के अन्दर एक जैसी है, मगर सुरत के कारण इसको केवल नारी कहा गया है। वास्तव में जो पुरुषों के अन्दर वासना उठती है वो भी नारी है। इस तरह यह संसार का विधान आदि काल से चल रहा है। आम आदमियों को इस वासना की गति का पता नहीं चलता! हम बाहर जो कुछ करते हैं, वासना के अधीन करते हैं, कई लोग अन्तर में साधन अभ्यास करते हैं कि अन्तर में तरह तरह के रूप रंग देखते रहें। उनको यह पता नहीं लगता कि अन्तर में भी जो कुछ दिखाई देता है, यह भी वासना रूपी नारी का ही काम है। इसी वास्ते कई सन्तों ने योगियों का बहुत खण्डन किया है कि वो भी रास्ते में ही रह गये। जब तक साधक उस प्रकाश जहां से यह वासनाएं पैदा होती हैं, आगे नहीं जाएगा वो नर हो या नारी हो, इस वासना रूपी नारी के चक्कर में ही रहेगा। यह बात इस लिए लिखनी पड़ी कि सन्तों ने जो ऊंची शिक्षा दी है, वो सच्ची है। अब कई भारत वर्ष के विज्ञानी अमरीका की सहायता से वहां के उपकरणों के द्वारा एक अनुसन्धान उपकरण जिसका नाम अनुराधा है छोड़ रहे हैं जो अंतरिक्ष में जाकर ब्रह्माण्ड की भिन्न भिन्न प्रकार की किरणों का ज्ञान देगा कि वो कैसे ब्रह्माण्ड से निकल कर नीचे आती हैं, सृष्टि की रचना करती हैं और जन जीवन को कैसे नियन्त्रण में रखती हैं। विद्यावान महिलाएं अर्थ का अनर्थ लगा लें तो उनकी मौज।

अब जब हम नर नारी इस दुनियां में आगए, कामनाओं के वश काम किया तो इस काम को करने में भी हमारे पूर्वजों ने, हमारे समाज ने या सन्तों ने कुछ नियम बनाए जिससे नर नारी अच्छी सन्तान पैदा कर सकें। उन नियमों में सबसे बड़ा नियम स्त्री जाति की मान प्रतिष्ठा है, अगर स्त्रियों का अपमान होता है तो भावी सन्तान भी अपमान वाली होगी। लिखा हुआ भी है :-

धन्यवाद

२५/- श्री गुरुचरन लाल कुशवाहा, रावतपुर, कानपुर

२५/- श्री गुरु बचन सिंह कुशवाहा, कानपुर

१००/- श्री बद्री नरायन पूरा लाल चौहान ने चि० राम कृष्ण गोविन्द को प्राप्त एयर कम्प्रेशर से उपलब्ध प्रथम पुण्य की उपलब्धि पर

एवं

११/- श्री कमल सिंह, आगरा ने अपने पौत्र जन्म पर मनुष्य बनो की सहायतार्थ भेजे हैं। मालिक से प्रार्थना है कि वह सबको सुख, शान्ति ऐश्वर्य एवं दीर्घायु प्रदान करे!

शोक समाचार

श्री रवीन्द्र सिंह, भवन गढ़ी अलीगढ़ ने अपने पितृ शोक पर ११ रु० मनुष्य बनो हेतु भेजा है। मालिक से प्रार्थना है कि वह उन्हें एवं उनके परिवार जनों को इस अपार कष्ट को सहने की शक्ति प्रदान करें। व उनके पिता की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

सूचना

परम दयाल हजूर मानव दयाल जी महाराज के अस्वस्थ्य हो जाने के कारण मार्च में होने वाला प्रोग्राम स्थगित करना पडा जिसके लिए खेद है अब हमें पुनः हजूर महाराज ने १ अप्रेल के आने की सूचना दी है अतः अब सत्संग प्रोग्राम निम्न प्रकार रहेगा।

आगवन	१-४-८६
सत्संग	२-४-८६ सुवह ९ से ११ बजे तक
	२-४-८६ सांय ४ से ६ बजे तक
सत्संग स्थल	गोविला एन्टर प्राइजस
	इन्डेन गैस गोदाम

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

का जल किसी पर छिड़क देगा, वह उसके वशीभूत हो जायगा ऐ सती ! इस मन की शक्ति से आकाश, जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु उत्पन्न होते हैं। यह सब में श्रेष्ठ और प्रबल हैं। मनुष्य समझता है कि आकाश के अवकाश में हम निवास करते हैं लेकिन यह उसकी समझ में नहीं आता कि इन तत्वों की उत्पत्ति मन ही से है। मानसिक जगत का राज्य यह मन ही है। तू राम के साथ बन में आई है। यहां इस मन का खेल तेरी समझ में आयेगा।

मन गोविन्द मन गोरखा, मन ही औगढ़ होय।
जो मन राखे जतन से, आप ही कर्ता होय॥
मन पानी मन पारथी, मन वायु मन आग।
जैसो मन से ऊपजे, तैसे ही पावे भाग॥
मन अज्ञान मूढ़ है, मन है चतुर सुजान।
मन चंचल मन निश्चला, मन को सब कुछ जान॥
मन मत सब संसार है, गुरु मत कोई साध।
जो पावे गुरू गम गती, उसका मता अगाध॥
कबहूं मन गगना चढ़े, कबहुं गिरे पताल।
कबहूं मन उनमुन लगे, कबहूं जावे चाल॥

ऐ सीता ! पति के प्रेम में मन को दृढ़ कर रक्खो और तब तू इस प्रसंग को समझेगी। योगी मन की योगाग्नि से जिसे चाहे भस्म कर सकता है। फौलाद का चना क्या होता है ! ध्यानी अपने मानसिक ध्यान से ईश्वर तक को वशीभूत कर सकता है। देवी देवता उसके आगे क्या होते हैं ! हां यह बात साधारण मनुष्य नहीं समझ सकते।

सीता अनुसुइया के पांव पड़ी। राम ने भी ऋषि के चरण पकड़ कर विदा मांगी। ऋषि ने कहा 'धन्य तुम ! धन्य तुम्हारी लीला ! अब तो ऐसा हो कि तुम मेरे मन में निवास करो

और अपनी दृढ़ भक्ति प्रदान करो। मैं कैसे कहूँ कि तुम जाओ। यों तुम जगत पति हो।'

यह कर ऋषि राम के चरणों में गिरे। राम ने उन्हें उठा कर छाती से लगाया और बन यात्रा को चले।

नोट—इससे पहले समुल्लास में प्रमाद के वशीभूत करने का रहस्य है। इसमें आहार के युक्त नियम पालन का भेद है।

पांचवां समुल्लास

विराध और मुनियों का समागम

प्रकृति में बाधक और सहायक दोनों प्रकार की वृत्तियां काम करती हैं। एक रुकावट का कारण होती है, दूसरी वृद्धि के मार्ग की तरफ ढकेलती है। एक को दबाना और दूसरी को उभारना होता है और फिर दोनों अपने अपने ढंग पर काम देने लग जाती हैं यह कई प्रकार की होती हैं, लेकिन द्वन्द्व जगत में इनके दो ही रूप माने जाते हैं।

असुर विरोधी वृतियां होती हैं और सुर सहायक वृतियां होती हैं। विरोधी वृति विराध कहलाती है और सहायक वृति के नाम ऋषि और मुनि हैं ऋषि वह है जो केवल मंत्र द्रष्टा होते हैं। इनका धर्म देखभाल हैं और मुनि वह हैं जो चुपचाप संभाल में लगे रहते हैं। सारा जगत इन दोनों प्रकार की वृतियों से भरा हुआ है। काम करने वाले विरोध से नहीं घबराते। यह न हो तो क्रियकारता की प्राप्ति असम्भव हो जाय।

राम सीता लक्ष्मण ने पग बढ़ाया। देखा आगे की तरफ से विराध राक्षस के रूप में हाहाकार करता हुआ भयानक बना हुआ डराने आ रहा है। राम ने ब्रह्मवाण (ओ३म विचार का ध्यान) उठाया और ऐसा तीर मारा कि रास्ते ही

घायल होकर गिरा और तड़पने लगा। राम को दया आई। उससे कहा—'तू मेरे धाम को चला जा। वहां तेरी दशा बदल जायगी।' और उसने अपना प्राण त्याग दिया।

यह आगे बढ़े और सरभंग मुनि के आश्रम में पहुंचे। मुनि ने देखा। प्रसन्न हुये। बोले—'भगवन ! मैं शिवजी (कल्याण) के धाम को जा रहा था। सुना, आप आ रहे हैं। आप इस कल्याण सागर (शिव के मान सरोवर) के हंस हैं। दर्शन मिला और यह दर्शन मेरे लिए कल्याणकारा हो गया। मैं साधन में हूं अब ऐसी कृपा कीजिये कि जब तक मैं इस स्थूल शरीर का त्याग न कर लूं तब तक आपको देखते देखते सूक्ष्म अवस्था में लय हो रहूँ और मेरा सरभंगपना (संस्कृत 'सर'-चलना और 'भंग'-दरार, टूटना) सफल हो जाय।

राम सीता लक्ष्मण वहां बैठ गये। मुनि ने योगाग्नि से अपने तन को जला दिया राख की ढेरी बन गई। देवताओं ने स्तुति गाई—

जय राम करुणासिन्ध, दीन दयाल परमानन्द घन।
जय प्रणतपाल कृपाल, अद्भुत रमापति करुणा अयन॥
दर्श पर्श विचार सेवा, ध्यान जप तप में जती।
देखा जो रूप अनूप, निर्गुण सगुण पाई सद्गती॥

नोट—यह सरभंग साधन अवस्था की वह वृति है जो ध्यान करते समय टूट जाती है एक भाव एक समान, एक दशा और एक अंश में नहीं रहता। ध्यान इस प्रकार हो कि बीच-बीच में उसका तार न टूटे। तब यह बहुत सुखदाई प्रतीत होता है।

राम ने उसे सुलझा लिया। इसका यह अलंकार है। इसके नाम पर बिचार करने से यह बात समझ में आ जायगी।

राम आगे की ओर बढ़े बहुत से ऋषि मुनि दर्शन के

निमित्त आये। रास्ते में हड्डियों का ढेर पड़ा हुआ था। आपने उनसे पूछा, 'यह क्या है ?' उत्तर मिला, 'भगवन ! आप जान बूझकर क्यों पूछते हैं ? यह ऋषि मुनि आदि की ठठरियां हैं जिन्हें निश्चरों (रात की चर्य्या करने वालों) ने खा लिया। उन्हें दिनचरों (दिन की चर्य्या करने वालों) की सहायता नहीं मिली। यह मरकर मिट्टी में मिल गये।' राम की आंखों में आंसू भर आये। उन्हें ढाढस देकर कहा—मैं इन सारे निशाचरों को मार गिराऊँगा। तुम धीरज धरो।'

नोट—निश्चर महा तामसी होते हैं उनकी वृतियाँ भी तामसी होती हैं। दिनचरों की वृतियाँ सात्विकी होती हैं। निश्चर और दिनचर का यह भेद है।

अनेक ऋषियों और मुनियों के आश्रम में जा जाकर राम के दर्शन से उन्हें सुखी किया। फिर अगस्त्य ऋषि के आश्रम में आये।

अगस्त्य के शिष्य सुतीक्षण, (सु—अच्छा, तीक्षण—तेज) ने सुना कि राम आये हैं, वह सर के बल दौड़ा। चरणों में आकर गिरा—

किसको थी आशा अयोध्या, त्याग बन में आयेंगे।
राम इस मधुबन को आकर, शोभावान करायेंगे॥
तारा चमका भाग का, दर्शन मिला आनन्द हुआ।
धन्य महिमा आपकी हैं, काम सहजे ही बना॥
मुझ में भक्ती है कहाँ, मुझमें कहां है कर्म ज्ञान।
योग युक्ती से न परिचित, है न मन में गुरु का ध्यान॥
मुझमें शक्ती है कहां, मुझमें समरथ की गम कहाँ।
मोक्ष काम और धर्म की, मुझमें है अर्थ की गम कहां॥
भक्ति दीजे पावनी सुखदायनी, सेवक विचार।
आपका सुमिरन सदा हो, आपके चरणों का प्यार॥

सुतीक्षण प्रेम में मग्न होकर कभी नाचता था, कभी गाता था। फिर आंख, कान, होंठ तीनों बंद हो गये। न कुछ दिखाई देता था न सुनाई देता था और न उसके मुंह से बाणी निकलती थी। यह क्या हुआ? वह अचेत होकर राम के आगे बावला बन कर धम से गिर पड़ा। यह क्या दशा थी? उन्मत्त तो वह था नहीं। न उसने दिखावे का सांग भरा था। बात जो हुई वह यह थी। ओ३म भूर भुवः स्वः।

नहीं पृथ्वी का रहा ध्यान उस में।
नहीं नभ का था अनुमान उसमें॥
कहां अन्तरिक्ष कहां जगत माया।
किधर धूप थी और किधर उसकी छाया॥
न तन की बदन की न मन की थी सुध बुध।
न श्रवण मनन और कथन की थी सुध बुध॥

राम मुनि को इस दशा में देखकर बहुत सुखी हुऐ। वह तो अचेत पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। इन्हें दया आई। उसके अन्तःकरण के मस्तिष्क में सूरज के समान जगमगाते हुए प्रगट हुए। प्रकाश तेज मय और तीक्ष्ण था। उसके तेज को सहार न सका। घबरा गया। आंखे खोल दी। इधर उधर देखने लगा। यह क्या दशा थी? कोई साधक हो तो इसे समझे। 'ओ३म भूर भुवः स्वः' के पश्चात जो दशा आती है वह थी और उसे 'तत् सवितुर वरेणयम्' कहते हैं।

पृथ्वी अन्तरिक्ष नभ मंडल, तीनों का नहीं ध्यान रहा।
ओ३म् नाम का जाप था अजपा, नहीं ज्ञान अनुमान रहा॥
ध्यान रहा नित उस सवितुर का, भर्गो देवस्य की धारा।
सवितुर के प्रताप महातम, धी महि निर्मल धारा॥
सवितुर प्रकटा जोति निराली, जोति जोति में जोति की खान॥

वह प्रकाश था अगम अनूपा, क्यों कर कोई करे बखान ॥
'धी मही धियो भर्गो घट छाया, धियो योन: प्रचोदयात' ।
यह रहस्य था सुगम सुहेला, संत बिना नहीं कोई कहा ॥
आगे पं छे राम की मूरति, हंस वंश का अंश लखा ।
देखा सवितुर रूप अनोखा, मन भया शान्त विचित्र महा ॥
यह रहस्य है गुप्त भेद है, बने सुतीक्षण तब जाने ।
जान जान पहचान करे कोई, कर पहिचान के तब माने ॥

आंख खुली । उठा । पांव पड़ा ।

धन्य लीला आपकी और धन्य महिमा आप की ।
किससे दूं पूरण धनी ! मैं अधम उपमा आप की ॥
आप हैं निर्गुण सगुण, और आप पूरण काम हैं ।
सच्चिदानन्दन् अखंडम् , आप शोभा धाम है ॥
मोह माया में फंसे क्या, समझे आपके रूप को ।
यह दुखी परजा कहां और, कैसे जाने भूप को ॥
अब तो चरणों में पड़ा, चरणों की छाया दीजिये ।
अपना किंकर मानकर प्रभु, दास सांचा कीजिये ॥
आपको भूलूं नहीं में अपना देह गेह ।
आपके ही पद कमल से, मेरा लगे दिन रात नेह ॥
राम ने कहा –'एवमस्तु !'

फिर पूछा –'मैं अगस्त्य ऋषि से मिलना चाहता हूं । क्या तुम उनका पता दे सकोगे ?

सुतीक्षण—'मैं आप के साथ चलकर उनका निवास स्थान दिखा दूंगा ।' राम समझ गये कि इसकी इच्छा साथ रहने की है और उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया ।

नोट–सु (अच्छा) और तीक्ष्ण (तेज) ।

छटा समुल्लास

राम और अगस्त्य ऋषि

राम को सुतीक्षण अगस्त्य ऋषि के पास लाया । वहां और बहुत से ऋषि थे जो चकोर के समान उनके चन्द्र मुख को देखकर चकित हो गये। राम ने सबको नमस्कार किया अगस्त्य ऋषि से मिलकर आपने कहा—'मैं जिस मंतव्य से बन को आया हूं वह आपको विदित है। मुझे उसके विषय में कुछ कहना सुनना नहीं है। अब ऐसा उपाय बताइये कि यह मनोरथ सिद्ध हो।'

अगस्त्य ने उत्तर दिया—'आप सर्वज्ञ हैं। आपकी माया प्रबल है, जिसकी थाह किसी को न आज तक मिली न आगे मिलने की आशा है। आप ज्ञान ध्यान के पूर्ण भंडार हैं। आपको उपाय बताना सूरज को दीपक दिखाना है। आपने यह प्रश्न पूँछ कर मेरा सम्मान और सत्कार किया है। यह कोई नयी बात नहीं है। आप जिसे चाहो बड़ा बनाओ; जिसे चाहो छोटा बनाओ। मैंने आपके इस वर्तमान स्वरूप में सगुण ब्रह्म का दर्शन किया और कृत्य-कृत्य हो गया।

ऐ राम ! इस संसार का यह नियम है कि जिसके मन में जो प्रबल इच्छा होती है प्रकृति आप उसकी सफलता में सहायक होती है और उसकी आवश्यक सामिग्री के इकट्ठा होने का प्रबन्ध आप ही आप होता चला आता है। मन में सच्ची चाह हो और यह उसका रास्ता निकाल देती है। आप दण्डक बन में जाकर 'पंचवटी नामक स्थान में निवास कीजिये। स्वयं सारा काज सिद्ध होने लगेगा।'

राम उठे, नमस्कार किया और चल खड़े हुए। राह में गृद्धराज को दर्शन देकर सुखी किया और गोदावरी के तट

पर दण्डक बन की पंचवटी में आकर गुफा में फूँस का झोंपड़ा बनाकर रहने लगे। उस तपोवन में जितने ऋषि मुनी रहते थे, उनके दर्शन को आने लगे और उनके निवास करने से वह बन स्वर्ग बन गया।

सातवां समुल्लास

राम लक्ष्मण का संवाद

एक दिन इस पंचवटी की पर्ण कुटी के आगे राम और लक्ष्मण दोनों भाई पत्थर की चट्टान पर बैठे हुए थे। सीता कुटी में थी।

लक्ष्मण ने पूछा—'प्रभो! मुझे आज आज्ञा हो तो मैं आपसे कुछ साधारण और असाधारण प्रश्न करूँ और आप मुझे संक्षिप्त रीति से उत्तर देते हुए समझा दीजिये। इस प्रश्नोत्तर का अभिप्राय केवल शंका समाधान और शंका निवारण है। जब मनुष्य के हृदय में संशय उत्पन्न हो जाते हैं तो उसके मन की शांति जाती रहती है और भ्रांति में पड़कर दुखी होता है।'

राम ने कहा—'समय अच्छा है। एकान्त का अवसर है। तुम्हें जो कुछ पूँछना हो पूछो। मैं बहुत संक्षिप्त और सूक्ष्म रीति से तुम्हें उत्तर दूँगा और तुम्हारे मन का भ्रम दूर हो जायगा।'

लक्ष्मण—'जीव और ईश्वर में क्या भेद है? और यह माया क्या वस्तु है जिसके भ्रम में पड़कर जीव चिल्लाता और घबराता है?'

राम—'ईश्वर जगत पति है और जीव उसकी प्रजा है। जो सम्बन्ध किसी राजा को उसकी प्रजा के साथ है वही ईश्वर और जीव में है।'

'ईश्वर में महान शक्ति रहती है। जीव में अल्प शक्ति है। ईश्वर सर्वज्ञ है। जीव अल्पज्ञ है।'

माया और कुछ नहीं है यह बुद्धि है। यह शब्द संस्कृत धातु 'मां' (माप और 'या' (यत्र) से बना है जिस यंत्र से सब तोल माप होती है और माप की जाती है वह बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'

'यह माया या बुद्धि दो प्रकार की है एक ईश्वरीय दूसरी जीवी।'

'ईश्वर इसी अपनी बुद्धि से संसार का प्रबन्ध करता है और जीव भी इसी के सहारे अपना व्यौपार और व्यौहार का साधन करता है। ईश्वरीय माया सर्वज्ञ है और जीवी माया अल्पज्ञ है यह दौनों में भेद है।'

'ईश्वरीय माया व्याप्त शक्ति है और जीवी माया अव्याप्त शक्ति है। ईश्वर में केवल एक माया है और जीव की माया में अनेकता है।'

'ईश्वर माया पति है। माया ईश्वर के आधीन है और जीव माया के अधीन है। माया जिसके अधीन हो वह ईश्वर है और जिस माया के आधीन यह प्राणी है, वह जीव है।"

"ईश्वर, जीव और माया के प्रश्नो के सक्षिप्त उत्तर हैं"

लक्ष्मण —"यह सच है और इसे में समझ गया। यदि माया बुद्धि ही मात्र है तो जीव को इससे दुःख क्यों होता है?

राम—ईश्वर की माया में एकता है। वह उसके सहारे रहती हैं। जीव की माया में अनेकता है। यह अनेकता उसके दुःख का कारण है।'

'एक बात तो यह हुई। दूसरी बात यह है कि जीव पर

दो मायाओं का प्रभाव पड़ा हुआ है। ईश्वरीय और जीवी माया का द्वन्द होने से यह द्वन्द पना उसके दुख सुख का कारण बन गया है।

'तीसरी बात यह है कि ईश्वरीय माया सूक्ष्म है। यह पर्दा तो है लेकिन सूक्ष्म होने से वह ईश्वर की शक्ति ढक नहीं सकती। जीव पर दोनों मायाओं ने पर्दा डाल रक्खा है और वह अंधेरे में रहता है। ईश्वरीय माया ईश्वर की ओर ईश्वरीय शक्ति की प्रकाशक मात्र है और जीवी माया स्थूल होने और ईश्वरीय माया के आधीन बनने से मोटा पर्दा बन गई है।'

लक्ष्मण—'यह ईश्वरीय और जीवी माया का रूप क्या है ?'

राम—'एकता और अनेकता। उदाहरण से समझो। ईश्वर ने अपनी माया से स्त्री को बनाया वह ईश्वर के जगत में एक स्त्री मात्र है लेकिन जीव की दृष्टि में वह स्त्री, स्त्री तो है लेकिन वह माता, बहिन, फूफी चाची, ताई, दादी, नानी और अनेक नाम वाली हो जाती हैं और इस अनेक नाम वाद को प्रपंच कहते हैं। यह भेद है।

आठवाँ समुल्लास

राम लक्ष्मण संवाद (लगातार)

लक्ष्मणण—'यह आश्चर्य है कि एक को माया दुखी नहीं करती और दूसरे को दुखी करती है।'

राम—'इसमें आश्चर्य कोई नहीं है। दुख एक में नहीं है। दुख तो दो और दोपने में है।'

लक्ष्मण—'परन्तु यह दोपना तो ईश्वर में भी है। एक ईश्वर और दूसरी उसकी माया।'

राम—'यह ईश्वर का दोपना ईश्वर की दृष्टि से नहीं है

बल्कि जीव की दृष्टि से है। नहीं तो ईश्वर और ईश्वरीय माया अभेद ही है। जीव हो ने इस भेद की कल्पना कर रक्खी है।'

लक्ष्मण—'तो जीव में यह शक्ति है कि वह अपनी कल्पना से द्वन्द को रच सकता है ?'

राम—'क्यों नहीं ! दो पने का भाव तो जीव में ही रहता है।'

लक्ष्मण—'आपने ईश्वर' और जीव में राजा और प्रजा की अपेक्षा बताई है। क्या इनमें यही सम्बन्ध है या इसके अतिरिक्त और भी कई बात हैं ?'

राम—'जीव ईश्वर का अंश है और यह ईश्वर के समान अविनाशी है।'

लक्ष्मण—'जब जीव ईश्वर आ अंश है तो फिर वह दुखी क्यों है ? ईश्वर तो सुख रूप है जीव को भी सुखी रूप होना चाहिए।'

राम—ईश्वर में न सुख है न दुख है क्योंकि जहाँ और जिसमें सुख रहेगा, वहां और उसमें दुख भी रहेगा। बिना सुख के दुख नहीं और बिना दुख के सुख नहीं। दोनों साथ साथ चलते हैं। जीव ने ईश्वर को सुख कल्पना कर रक्खा है और अपने को दुखी मान रक्खा है, इसलिए ईश्वर का सुखी होना जीव की दृष्टि से है, नहीं तो उसमें सुख है न दुख है।'

लक्ष्मण ने कहा—'ईश्वर सच्चिदानन्द कहा जाता है।'

राम—'यह सच है लेकिन यह कहना भी जीव दृष्टि से है। जीव में सत् की सत्ता (जीवन) है, जोव में चित्त की चित्ता (बुद्धि) है और जीव में आनन्द की आनन्दता (सुख) है। यह तीनों गुण जीव में है। वह इन गुणों के साथ रखता

हुआ अपने आपको अधूरा और ईश्वर को पूरा समझता और उसमें सत्, चित्, आनन्द की पूर्णता को आरोपण करता है। जो जैसा रहता है उसका बिचार वैसा ही हुआ करता है और जो जैसा विचारता है और सोचता है वह वैसा ही बन जाता है।'

लक्ष्मण—'यह सच है लेकिन यह तो बताइये कि जीव का अंशा अंशीभाव किस प्रकार का है ?'

राम—'जैसे समुद्र और समुद्र की बूंद, जैसे सूर्य और सूर्य की किरण, जैसे रेत का टीला और रेत का अणु, जैसे जंगल और जंगल के वृक्ष, या जैसे पानी और मछली।'

लक्ष्मण—'यह उदाहरण तो मेरी समझ में आगये। अब मैं यह समझता हूं कि ईश्वर का अंश होते हुए यह अंश दुखी होता है और मरता खपता है। समुद्र खारा है। वह खारापन उसकी एक एक बूंद में है। ऐसा गुण जीव में नहीं दिखाई देता।'

राम—ईश्वर अविनाशी है। जीव भी अविनासी है। ईश्वर जीता जागता है। जीव भी जीता जागता है। ईश्वर में बुद्धि है, जीव में भी बुद्धि है। ईश्वर में सुख है; जीव में भी सुख है। ईश्वर सच्चिदानन्द है, जीव भी सच्चिदानन्द है। इस दृष्टि से सारे गुण जो ईश्वर में है या जीव ने कल्पना कर रक्खे हैं, वह सब के सब जीव में हैं।

एक जीव भी इनके बिना नहीं है। तुमको जो शंका रहती है वह केवल इतनी है कि जैसे समुद्र खारी है वैसे ही बूंद भी खारी है। यह शंका तो सही है लेकिन तुम यह नहीं पूछते कि यह शंका क्यों है ? यह प्रश्न किये होते तो सहज रीति से शंका का समाधान हो गया होता। मनमें है कुछ और कहते हो हो कुछ और।'

मैं आप ही इसकी जड़ में तुमको पहुंचाये देता हूं। जीव ने समुद्र को अपने से अलग मान रक्खा है। इसकी दृष्टि में समुद्र पूर्ण है और अधूरा है। अधूरे पन के गुण से वह अपने आपको हर बात में अधूरा समझ रहा है और ईश्वर को अपने आप से अलग मान रक्खा है तो उसे अधूरा और अलग होना भी चाहिए। नहीं तो जीव और ईश्वर में यह भेद न होता और न ऐसी शंका उठती।'

लक्ष्मण—'यह भेद क्यों है ? और किस लिए है ? इसका कारण क्या है ?

राम—'माया, बुद्धि और माया बुद्धि का प्रपंच।'

लक्ष्मण—'इस माया का विस्तार कितना है ?'

राम—'जहां तक तुम्हारी इन्द्रियां जाती हैं, जहां तक तुम्हारी वाणी कथन कर सकती है, जहां तक तुम्हारा मन पहुंचता है और जहां तक का निर्णय तुम्हारी बुद्धि कर सकती है वहां तक इस माया का विस्तार है।'

लक्ष्मण—'उसके आगे क्या है ?'

राम—'इसके आगे इन्द्रिय, मन, वाणी और बुद्धि नहीं जाती। ऐसी दशा में न कोई कुछ कह सकता है न समझ सकता है। फिर कोई कहना भी चाहे तो क्या कहे और क्यों कहे ?

नवाँ समुल्लास

राम लक्ष्मण संवाद (लगातार)

लक्ष्मण—'प्रभू ! आपने समझाने को तो सब कुछ समझा दिया और समझ भी गया, लेकिन इतना स्पष्ट रीति से और भी बता दीजिये कि ईश्वर और जीव की माया का क्या भेद है ?'

राम—ईश्वर की माया में मेरा तेरा पना नहीं है। जीव की माया में मेरा तेरा पना है। इस मेरे तेरे पने में अहंकार रहता है और यह अहंकार मोटा रस्सा बनकर जीवों को कस कर बांध लेता है और वह असमर्थ होकर दुखी रहते हैं। यह मेरा तेरा पना न रहे तो दुख का नाश हो जाये। ईश्वर की माया में यह नहीं है इसलिए उसे बंधन नहीं है।'

मार तोर संसार है, और नहीं संसार।
मोर तोर बन्धन महा, बन्धन का बिस्तार ॥
मोर तोर करता फिरे, भ्रम अज्ञान भुलान।
मोर तोर में फँस मरा, निबल जीव अंजान ॥
मोर तोर को त्याग दे, सहित प्रेम अनुराग।
मोर तोर में जो फंसा, मन्द है उसके भाग ॥

लक्ष्मण—'प्रभो ! यह बन्धन महा कठिन है। इसके काटने का सहज उपाय क्या है ?'

राम—ईश्वर की सगुण उपासना। 'गुण के साथ साथ जो मनुष्य ईश्वर की उपासना करेगा वह सहज रीति से इस संसार के बन्धन को काट सकेगा। इससे सुगम, सहज और सरल साधन कोई नहीं है।'

लक्ष्मण—'क्या निर्गुण उपासना लाभदायक नहीं है ?'

राम—'क्यों नहीं ! लेकिन उसके अधिकारी लाखों में एक आध मिलते हैं। वह ज्ञानियों का पंथ हैं। ज्ञानियों की संख्या अधिक नहीं होती। साधारण मनुष्य बहुत होते है। कहने के लिये तो लोग अहंकार और अभिमान से कहते रहते हैं कि हम निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं लेकिन यह कहना ही कहना है। इन बेचारों को तो इतनी भी समझ नहीं है कि किसे सगुण और किसे निर्गुण कहते है।

लक्ष्मज—'सगुण और निर्गुण का भेद क्या है ?'

राम—'जो गुण के साथ हो वह सगुण और जहां गुण का पता न लगे वह निर्गुण है।'

'गुण तीन हैं—सत्, रज, तम। तत्व तीन हैं—कारण, सूक्ष्म, स्थूल।

अवस्था तीन हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति और इन्हीं तीनों के अन्तर्गत सगुण और निर्गुण का भेद है। इस पर विचार करो तो यह रहस्य तुम्हारी समझ में आ जाय।'

लक्ष्मण—'तब समझाइये।

राम—'मुझे देखो। मैं सगुण स्वरूप हूँ मेरे शरीर है, इन्द्रियां हैं और मन आदि के स्थल में मुझे तुम देखते हो। यह देखना जाग्रत अवस्था में होता है और उसे दर्श पर्श कहते हैं। जब उस रूप के साथ प्रेम हो गया तो जाग्रत को छोड़कर तुम स्वप्न में मेरा सूक्ष्म रूप देखोगे। यह गुण है और उसी गुणों के आकार रहते हैं। जब उसमें घनापन आ गया तो यह स्वाभाविक रीति से तुमको कारण अवस्था में ले जायगा, जो सुषुप्ति है। यह निर्गुण कहलाता है। उसमें किसी गुण का भास नहीं होता।

सगुण गुणों के साथ है गुण गुण ही है और निर्गुण में गुण का अभाव है।

कर्म सगुण में ध्यान मन के गुण में और लय निर्गुण में होता है।

सचाई का अभाव है यह न सगुण है न निर्गुण । जाग्रत लीला लीला सगुण स्वप्न लीला गुण, और सुषुप्त लीला निर्गुण हैं। यह व्याख्या है।

सगुण में दर्शन, गुण में ज्ञान और निर्गुण के लय में चरित्र है।

निर्गुण उपासना में न कर्म है न ज्ञान है न उपासना है। यह तो मन को इनसे रहित करना है यह इसकी समझ से बाहर है।'

लक्ष्मण—ईश्वर यदि व्यापक है तो सब में इसका ध्यान उपासना और ज्ञान होना चाहिए।'

राम—यह कहने सुनने की ही बात है। ध्यान कहते हैं धारण करने को पकड़ रखने और अपने अन्तर में प्रकट करने को और उसकी सम्भावना केवल दृष्टि में आने वाले रूप में है और हो सकती है।'

जिसको आंखों से नहीं देखा, है उसका ध्यान क्या ?
जब न कानों से सुना, तुम ही कहो फिर ज्ञान क्या ?
देखलो आंखों से पहले सुन लो इसके भेद को ?
देखने सुनने बिना, होगा तुम्हें अनुमान क्या ? ॥२॥
है सगुण पहला यो निर्गुण इसके पीछे ए लखन ?
जब नहीं यह फिर बतादो, जान क्या पहिचान क्या ॥३॥
नाम लेते हो, तो नामी से मिलो समझो इसे ?
जब नहु मिलते तो फिर है नामो का स्थान क्या ?॥४॥
पोथियों को पढ़ लिया, और स्तुति को गा लिया ?
ऐसे जनकी स्तुति क्या, और उसका ज्ञान क्या ? ॥५॥

'मूढ़ अज्ञानी जन बड़े अहंकार से कहते फिरते हैं कि हम तो सर्व व्यापक ईश्वर का ध्यान करते हैं। उनकी बातों

को सुन लो। वह ज्ञान और ध्यान दोनों से रहित हैं। इन्हें किसी बात की समझ नहीं है।'

लक्ष्मण—'आपने सगुण उपासना की महिमा कही और वह सच भी है, लेकिन इसमें रहस्य क्या है ?'

राम—'आग अपने अग्नि मंडल में सारी वस्तुओं में सूक्ष्म रूप से व्यापक है। वह मिट्टी में, पत्थर में, लोहे में, पानी में, लकड़ी में, सब जगह है, लेकिन वह न किसी की साथी है न किसी की विरोधी है। उससे न तुम्हें गर्मी मिलेगी न खाना पकेगा। चाहो उसे प्रकट करो और अपने व्यवहार में उससे लाभ उठाओ। यों काम करने और करते रहने से तुम उसके स्थूल रूप को देखकर उसके सूक्ष्म रूप का अनुमान कर सकोगे और फिर धीरे धीरे उसका कारण रूप भी समझ में आ जायगा यह रहस्य है।'

दसवां समुल्लास

राम लक्ष्मण का संवाद (लगातार)

लक्ष्मण चुप हो गये। राम ने अपने भाषण को बंद नहीं किया।

राम ने कहा—'भाई ! विद्या और अविद्या, ज्ञान और अज्ञान हैं। ज्ञान से भ्रम की जड़ कटती है और अज्ञान से भ्रम बढ़ता है। बन्धन का मूल कारण अविद्या और अज्ञान है और मुक्ति का मूल कारण विद्या और ज्ञान है।

'इस विद्या के दो रूप हैं—एक परा और दूसरा अपरा। परा विद्या केवल गुरू की कृपा सतसंग और भक्ति से प्राप्त होती है। अपरा विद्या पुस्तकों, ग्रन्थों, और लेखकों की रची हुई वाणी से मिलती है। उपयोगी दोनों हैं लेकिन परामर्थ में

केवल परा विद्या सहायक होकर परम पद दिला देती है। एक व्यवहार है और दूसरी परमार्थ है।'

'धर्म से मन पवित्र होता है और योग साधन से ज्ञान मिलता है। विना धर्म और साधन के परम पद नहीं मिलता

'अविद्या से संसार उत्पन्न होता है और यह गले की फांसी बनकर जीवों को दुखी करती रहती है। विद्या से इसका नाश होता है, विद्या का मंतव्य परा विद्या से है।'

'जब परा विद्या से उपलब्धि होती है तब सारा जगत ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है—'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, अखिलम् इदम् ब्रह्म, ब्रह्म सत्यम् जगत मिथ्या' और इस एक का भाव अंतःकरण में इस प्रकार प्रवेश करके दृढ़ हो जाता है कि फिर भ्रांति, अशान्ति और दुख क्लेश नाम मात्र के लिये भी नहीं रहते।'

'इन सब का सार भक्ति है, जो हर बात का अधिकार और संस्कार प्राप्त कराती है। इससे लोक और परलोक दोनों ही का सुधार होता है।'

'जो मन, बचन और कर्म से मेरे भक्त हैं वह मां, बाप अड़ौसी, पड़ौसी बड़े छोटे सब के साथ प्रेम का वर्ताव करते है। उनमें न दंभ है न कपट है न मान है न ईर्ष्या है, न काम है न क्रोध है। उनका काम निष्काम होता है। ऐ लक्ष्मण मेरे भक्तों के यही लक्षण हैं। और चाहे मैं अयोध्या में रहूं या बन में, चाहे तुम्हारे साथ रहूं या सीता के, सच्ची बात यह है कि मैं निरंतर रात दिन इन्हीं भक्तों के अन्तर में निवास करता हूं। जिनको मुझसे मिलने की इच्छा हो वह मेरे भक्तों से मिलकर मेरी खोज करें। यह उन्हें मेरा पता देंगे और मुझ तक और मेरे परमधाम तक उन्हें पहुंचा देंगे।'

एक हूं मैं एक और भक्तों के निशदिन पास हूं।
मैं ही उनका शिव हूं और मैं मानसर कैलास हूं॥
मैं नहीं हूँ जल न अग्नि में न वायु पृथ्वी।
मैं न जल थल का हूँ वासी और न मैं आकाश हूँ॥
प्राण हूं प्राणों का, जीवन का हूँ सबके तत्व सार।
मैं हूं क्या तुमको बताऊँ, साँसों का मैं साँस हूँ॥
भक्तों के हृदय का वासी, उनके घट में है निवास।
उनका रमता राम, उनका साथी और सहवास हूँ॥
एक हूं कहने को, भक्तों के लिए हूं मैं अनेक।
उनका मैं विश्वास निश्चय, सच्ची उनकी आस हूँ॥
मैं हूं उनका वह हैं मेरे, औरों से मैं हूं अलग।
दास जो मेरे बने लक्ष्मण ! मैं उनका दास हूं॥
छोड़ो भ्रम और भ्रांति, भक्ती करो मेरी सदा।
सुख लो और आनन्द मुझसे, मैं सदा सुख रास हूं॥

यह कहकर राम चुप हो गये लक्ष्मण पांव पड़ गये।

मैं अज्ञानी और मूढ़ जीव हूँ। मुझे ज्ञान ध्यान की समझ नहीं है। आपने आज दया करके मुझे सबका सारांश थोड़े में समझा दिया। इससे अधिक समझ बूझ नहीं चाहिए। हां! इतना हो कि मैं आपका मन बचन और कर्म से सेवक बना रहूँ इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

राम ने लक्ष्मण को उठाकर छाती से लगाया। उनके सर पर दया का हाथ फेर कर कहा—'एवमस्तु,' इतने में सीता जी पर्ण कुटीर से बाहर आ गई और इनका संवाद समाप्त हो गया।

—०—

द्वितीय भाग

पहला समुल्लास

सूर्पनखा का पंचवटी में आना

रावण लंका का नीतिवान प्रतापी राजा था। सारे भूमण्डल में इसी के नाम की बधाई बजती थी उसने देश देशान्तर के राजाओं, भुवन भुवान्तर के ऋषियों मुनियों अरौ लोक लोकान्तरों के देव और देवताओं को वश में कर रखा था। उसके एक सिर में दस शिरों की शक्ति थी और उसके दो हाथों में बीस भुजदन्डों का बल था। दसों इन्द्रियों के मुख्य मुख्य देवता उसके आधीन थे। इसी दृष्टि से वह दशमुख कहलाता था पंडित, शास्त्रों और वेदों का जानने वाला था। यहां तक कि वह तमाम वेद का पाठ बड़े सुरीले राग में करता था और इस वेद पर उसने अपनी टीका कर रखी थी। लंका उसके राज्य में स्वर्णभूमि कहलाती थी। सभ्यता में उसकी साख मानी जाती थी। लंका का प्रबन्ध उसने इस प्रकार कर रक्खा था कि अन्य देश के मनुष्य वहां नहीं जा सकते थे। मनुष्य तो मनुष्य ही थे, लंका जाते समय अन्य देश के पक्षियों के पंख जलते थे। उसके गुप्त दूतों की सेना अनेक भेषों में फैली हुई थी जो कि हर जगह के समाचार पहुंचाया करती थी। इसी सेना में उसके सम्बन्धी भी थे।

राम जब दंडक बन की पंचवटी में आकर ठहरे। रावण की बहिन जो गुप्त दूती थी, बड़ी सुन्दर और रूपवती थी। उसके उंगलियों के नख सूप (छाज) के आकार के थे।

इसलिए बचपन में उसका नाम सूर्पनखा रक्खा गया और इसी नाम से वह प्रसिद्ध थी।

उसने सुना दो तपस्वी युवा पुरुष बन में आकर रहने लगे हैं। वह क्यों आये, इसका उसे ज्ञान नहीं था। भेद लेने और रावण को समाचार सुनाने के विचार से वह पंचवटी में आई। राम और लक्ष्मण की सुन्दरता इसकी आंखों में गई। देखते ही मोहित हो गई।

राम सांवले रंग के थे। उनका श्याम वर्ण का शरीर नीले कमल या अलसी के नीले रंग का सा था। सांवला रूप गोरे रंग से भी अधिक सुन्दर लगता है। वह राम के पास आई और पूछा—'तुम कौन हो?' राम ने उत्तर दिया 'हम दोनों भाग अवध देश के राजकुमार हैं। पिताजो ने हमको बनवास दिया और हमारे छोटे भाई भरत को राज दिया। हम यहां तप करने आये हैं। हमारे नाम राम और लक्ष्मण हैं। साथ में हमारी पत्नी सीता भी आई है। यह अकेली हमारे बिना अवध में न रह सकी। हमने तुम्हें अपना परिचय सुना दिया। अब यह बताओ तुम कौन हो और इस बन में कैसे अकेली फिर रही हो।'

सूर्पनखा ने उत्तर दिया—'मैं रावण की बहिन हूं। तुमने उसका नाम सुना होगा। मैं बहुत सुन्दर और रूपवती हूँ। मेरी सुन्दरता का जैसा कोई पुरुष अब तक दृष्टि में नहीं आया इसलिए मैंने अब तक अपना विवाह नहीं कराया। क्वारी हूँ दैवयोग से आज तुमको देखा। जैसी मैं रूपवती हूँ वैसे ही तुम भी रूपवान हो। तुमको देखकर मेरा मन मोहित हो गया है। तुम मुझे अपनी स्त्री बना लो हम दोनों का जोड़ा बहुत अच्छा रहेगा।'

राम बोले—'सुन सुन्दरी ! मैं तो अपनी पत्नी के साथ हूं और मैंने प्रतिज्ञा की है कि स्त्री व्रत धारण कर रक्खूं और एक को छोड़कर दूसरी स्त्री का मुंह भी न देखूं इसलिए मैं विवश हूँ प्रतिज्ञा वद्ध हूँ। मेरा छोटा भाई लक्ष्मण जो उस वृक्ष की छाया में बैठा हुआ है, ब्रह्मचारी है। तू उसके पास जा। वह तुझे स्वीकार करता है तो मैं उसे प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दे दूंगा।'

सूर्पनखा लक्ष्मण के पास गई। वह गोरे रंग के थे, सुनहला छरैरा बदन ! सूर्य के समान उनका तेज था। उनसे भी वही बात कही।

लक्ष्मण ने कहा—'मैं राम का सेवक हूँ मैंने १४ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है जिसे मैं भंग नहीं कर सकता और यदि मैं तुझे अपने साथ रख भी लूं तो तू सीता महारानी की सेविका और दासी बनना स्वीकार न करेगी मैं स्वयं राम का दास और सेवक हूँ। सेवक का धर्म महा कठिन है। इसलिए मैं तुझसे बेवश होकर कहता हूं कि मेरे विचार को तू त्याग दे। राम के पास जा। वह राजा महाराज हैं। राजाओं के रनवास में कई कई रानियाँ रहती हैं और रह सकती हैं।

वह निराश होकर राम के पास लौट आई। 'तुम्हारा भाई मुझे अपने पास रखना नहीं चाहता।'

राम ने समझा बुझाकर लक्ष्मण के पास भेजा। वह आई। लक्ष्मण ने कहा—'सुन्दरी ! तुझे लज्जा नहीं आती। तूने लाज को धोकर पी लिया है। मैं ब्रह्मचारी हूं। स्त्री करना तो अलग रहा, मैं स्त्री का रूप तक देखना नहीं चाहता।'

वह खिसियानी हो गई। लक्ष्मण की बातों ने उसके हृदय की बेदी के अग्नि कुंड में आहुति का काम किया। क्रोधाग्नि

प्रज्वलित होकर प्रचण्ड हो गई। उसने कहा—'यह सीता मेरे रास्ते में कांटा है। यह न होती तो तुम मुझ पर लट्टू हो गये होते और मेरे रूप को देखकर रीझ गये होते। यह निबल दुबली पतली अबला मेरे सामने क्या है! मैं इसे अभी देखते देखते खा जाती हूँ इसकी हड्डी पसली का इस प्रकार चबा जाऊँगी कि डकार तक न लूँगी। तुम स्त्रियों की डाह की समझ नहीं रखते।'

वह सीता पर झपटने ही को थी कि राम ने अपनी आंखों से लक्ष्मण को इशारा किया। वह दौड़कर आये और उसकी नाक और कान काट कर उसके हाथ में दिया—'तेरी जैसी निर्लज्ज स्त्री के साथ ऐसा ही वर्ताव करना उचित है।'

वह रोती चिल्लाती वहां से भाग खड़ी हुई। नाक कान काट कर उसके हाथ में देना रावण के साथ लड़ाई मोल लेने का चैलेंज था:—

नोट :—सूर्पनखा—स्थूल रूप कामातुर स्त्री का क्षोभ।

दूसरा समुल्लास

राम और खर-दूषण और त्रिसरा के साथ युद्ध

रावण का नियम था कि उसके गुप्त दूत और गुप्त दूतियों को सहायता के निमित्त आस पास बलवान सेना भी रहती थी। इस सेना के सेनापति खर और दूषण थे। यह दोनों रावण के भाई भी थे।

सर्पनखा के नाक कान दोनों कट गये। गेरू के समान इन इन्द्रियों से रक्त की धारा बह चली। सारा मुँह और शरीर लहू लुहान हो गया और क्रोध से उसकी आंखें लाल अंगारा हो रही थीं।

तीनों भाइयों ने उससे पूछा—'तेरी यह गति किसने बनाई ?'

आग भभूका बनी हुई सुर्पनखा बोली—'बन में दो तपस्वी लड़के आये हैं। उन्होंने मेरी दुर्गति की है।'

इतना सुनना था कि भाइयों ने उसी समय कटक सजाने और तपस्वी बालकों को दण्ड देने का विचार किया। राक्षसों का दल एकत्रित हुआ और जब यह पंचवटी के समीप पहुंचे, राम ने देखा बहुत धूल उड़ती आ रही है और इसके पीछे लड़ाकों का दल आ रहा है।

अक्षमण ने कहा—'निश्चर आ गये। सूर्पनखा उन्हें बुला लाई है। तुम सीता को किसी वृक्ष में छिपा आओ और इस भयंकर युद्ध में मेरा साथ दो।'

लक्ष्मण ने ऐसा ही किया और दोनों रणभूमि में आकर डट गये।

सूर्पनखा राक्षस दल के आगे थी। यह कुसुगन था। राक्षसों ने राम को ललकारा।

शूर हो, वीर हो, रणभूमि में आकर डट जाओ।
अपनी करनी का जो फल पाना है आकर वह पाओ॥
तुम हो कायर तो न मुंह सामने आकर दिखलाओ।
भागो और भाग के तुम प्राणों को अब अपने बचाओ॥
मृत्यु का सामना है, सामने आओ वीरो।
खोलकर छाती लड़ो, रण से न जाओ वीरो।

राम और लक्ष्मण दोनों ने वाण बरसाने आरम्भ कर दिये। जैसे सूर्य की किरणों से बादलों की काली काली घटायें फट जाती हैं शत्रुओं के दल पल के पल में छिन्न भिन्न होने लगे।

केवल दो ही लड़के थे। इधर हजारों थे। वह इनका

सामना न कर सके। सांप के समान जब लपलपाते हुए बाण धनुष से छूटते थे एक के साथ साथ दस को डस लेते थे और वह बेदम होकर पृथ्वी पर कटे हुए ताड़ों के समान अड़ अड़ाधम करते हुए गिर पड़ते थे खर दूषण ने इन योद्धाओं के बल को देखा। यह महाबली राजकुमार हैं। इनका सामना करना महा कठिन। दूतों को भेज कर कहला भेजा। 'तुम छोटी आयु के बालक हो। अपनी तीर कमान हमें देदो, घर लौट जाओ। हम तुम्हें मारना नहीं चाहते।'

राम ने उत्तर में कहा—'हम अपने राजा भरत के भेजे हुये तुम जैसे खलों को दण्ड देने और तुम्हारे नाश करने को आये हुए हैं। तुम जैसे दुष्कर्मी, दुष्टों को ढूंढते फिरते हैं। तुम हमको क्या रक्षा दोगे, हम उस समय तक तुम्हें चैन न लेने देंगे जब तक एक एक को मिट्टी और भूमि में न लिटा देगे।

जब दूतों ने आकर यह बात सुनाई, राक्षस दल में क्षोभ आया और समुद्र की लहरों के समान रण भूमि में पिल पड़े।

'मारो, मारो, इन्हें भागने न दो, हो सके तो जिंदा पकड़ लो, इन्हें लड़ने भिड़ने का स्वाद मिले।'

राम लक्ष्मण ने धनुष बाण संभाला। फिर वही मार धाड़ का दृश्य आँखों के सामने आया। शत्रु दल हथियार से सजा सजाया आया था। बर्छे, भाले, तलवार, फर्से, बाण सब ही कुछ उनके साथ थे। यह राम लक्ष्मण के बाणों के सामने नहीं ठहर सके। बाण क्या गिरते थे, बिजली गिरती थी। राक्षस जल भुनकर मर जाते थे। बाणों की बाढ़ ने राक्षसी सेना को दम के दम में लहू की बहती हुई नदी में डुबा दिया यह इस प्रकार उसकी धार में डूबे जैसे कोई बहती हुई बरसात की नदी अपने उमड़ते हुए पानी में दोनों तरफ के तटों की पृथ्वी

को काटते हुए गिराती चलती है। एक भी तो लड़ाकुओं में से नहीं बचा। जो कायर थे उनमें भगदड़ मच गयी। राम ने उनका पीछा नहीं किया। हां णो सामने आया उसे अपने बाणों का निशाना बनाने से नहीं चुके।

जब यह मर मिटे, आकाश के रहने वाले देवताओं ने अपनी प्रसन्नता प्रगट की, फूल बरसाये और नभ मंडल से जै-जै के शब्द की धुनि चारों ओर से आने लगी। अब जाकर उनको निश्चय हुआ कि राम से इनकी पूरी पूरी सहायता होगी और जिस काम के लिए उनका अवतार हुआ है वह सब प्रकार से पूरा होगा।

सीता, खोखले वृक्ष की कंदरा से बाहर आई। दोनों वीर उस समय वीर रस के रूप बने हुए थे। यह उन्हें देख कर प्रसन्न हुई।

नोट—१-खर-गिद्ध बुद्धि, २-दूषण-दोष-बुद्धि, ३-त्रिसरा तीन सिर वाला (सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी) राक्षस।

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

सूर्पनखा आने को तो तीनों भाइयों के साथ रणभूमि में आ गई थी, लेकिन जब राम लक्ष्मण के बाण बरसने और राक्षसों के सिर कट कट कर आकाश मंडल में पंख खुले पक्षियों के समान उड़ने लगे, वह उस रणभूमि से भाग निकली और अपने निवास स्थान में ठहर कर उनकी प्रतीक्षा करने लगी।

जब युद्ध समाप्त हुआ और धुआं उड़ने लगा, उसने समझा कि निश्चर दल सब का सब मारा गया और उनकी लाशों को आग दे दी गई। इसके पीछे भगीदड़ा पहुंचे। लड़ाई के परिणाम से उसे सूचित किया।

वह घबराई, डरी और व्याकुल हो गई। स्त्री थी। शूर वीर योद्धा न स्त्रियों पर हाथ उठाते हैं और न उनका अपमान करते हैं। यहां पंचवटी में यह अनर्थ हुआ कि उसके नाक काट लिए गये। कहीं ऐसा न हो कि राम लक्ष्मण वहां पहुंच कर उसे भी ठौर ठिकाने लगादें। वह वहां से भी भागी और लंका में पहुंची।

रावण अपने महल में था। उसने जाते ही उसे उकसाना आरम्भ किया। 'सुरापान पीकर मतवाला बना रहता है। खाया पीया और पांव फैलाकर सो रहा। सिर पर आपत्ति मंडला रही है और तुझे अपने सिर और पांव तक की खबर नहीं है। बिना नीति के राज काज नहीं चलता, बिना सत्कर्म के धर्म नहीं ठहरता। तप का नाश कुसंग से होता है, बिन सोचे समझे विवेक को हानि होती है। जो मनुष्य बैरी, आग पानी, ऋण (कर्ज) और पाप को छोटा समझता है, उसके बचाने में ईश्वर भी असमर्थ है। देख ! मैं तेरी बहिन कहलाती हूँ तेरे होते हुए मेरी क्या दशा हो गई है।'

इतना कहकर वह रोने लगी।

रावण या तो उन्मत्त पड़ा हुआ लेटा था या घबराकर उठ बैठा। 'यह क्या हुआ ! किसने तेरे नाक कान काटे हैं ?, सूर्पनखा ने अपने नाक और कान उसके आगे रख दिये। अवध नरेश के दो लड़के राम और लक्ष्मण अपना देश छोड़ कर दक्षिण में आये हैं। दण्डक वन की पंचवटी में ठहरे हुए हैं और कछार के सिंहों के समान बन में निडर फिर रहे हैं।

उनका बल पाकर ऋषि, मुनि जो अब तक तेरे वशीभूत थे, अभय हो गये हैं। यह देखने में छोटे लड़के हैं, लेकिन बल पौरुष और पराक्रम में अद्वितीय हैं। यह सुन्दर भी बहुत हैं और इनके साथ एक स्त्री है, जो चाँद का टुकड़ा है। मैं समाचार पूछने गयी। राम के भाई लक्ष्मण ने तेरी गुप्त दूती समझकर नाक कान काट लिए और कहा—'राजनीति गुप्त दूतों को दण्ड भी बताती है। मैं इस अपमान को सहकर खर-दूषण और त्रिसरा के पास गई। उन्हें अपनी दुर्गति सुनाई। उन्हें वह मारने दौड़े और उल्टे आप मारे गये। एक वीर राक्षस भी जीता नहीं बचा।'

रावण महल से उठकर सभा में आया। अपने कर्मचारियों से कहा—'खरदूषण और त्रिसरा मुझसे बलवान थे राम ने उन्हें मार गिराया। मेरी बहिन के नाक कान काट लिये यह यहां अनुचित काम हुआ, कहो तुम क्या कहते हो ?'

सभासदो ने उत्तर दिया—'जान का बदला जान, स्त्री के बदले स्त्री। उन पर चढ़ाई की जाये उन्हें जान से मार दिया जाये और उनकी स्त्री छीन ली जाये।'

रावण सभा से उठकर महल में आया। और रात भर विचारता रहा—'यह राम लक्ष्मण कौन हैं जो निडर होकर इस प्रकार मेरे राज में आये हैं। उसे नींद नहीं आई। करवटें बदलता और सोचता रहा। सम्भव है कि महाप्रभु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण किया है और यह लीला तेरे कल्याण के हेतु हो रही है निशाचर होने से मैं भक्ति और ज्ञान का अधिकारी नहीं हूं अब और कुछ न करूंगा उनसे वैर और बिरोध ठानूगा, लड़ूंगा, खेब खिलाऊंगा, कटूंगा, मरूंगा। इसी में मेरी भलाई है।

ज्ञानी कहते हैं कर्म का अन्त कर दो। दो अन्त एक साथ मिल जाते हैं। बैर भाव मेरे लिए सुगम है। मेरी भलाई उनके मित्र या भक्त बनने में नहीं है बल्कि शत्रुता के व्यवहार में ही मेरा कल्याण है। इससे जल्द उद्धार हो जायगा।'

उसे पहले जन्म की दशा और कथा का स्मरण हुआ, नींद आ गई और सो गया।

दूसरा समुल्लास

राम सीता का संवाद

जिस रात को रावण सूर्पनखा से राम के आने का समाचार पाकर करवटें बदलते सो रहा था, उसी रात के दूसरे दिन प्रातःकाल राम उठे। लक्ष्मण तो कन्दमूल की खोज में बन को गये। सीता अकेली थी।

राम ने कहा—'प्रिया तू मेरी अर्द्धाङ्गिनी है। मैं तेरा अर्द्धांगी हूँ। मैं पुरुष हूँ, तू प्रकृति है। मैं जगत में सत् का रूप हूँ और तू मेरी छाया है। तू मुझसे कभी अलग नहीं है। सत् (Positive) और सत्ता (Negative) तत्व हैं। इस संसार में सारे प्राणी किसी न किसी कर्तव्य के निमित्त आते हैं। जब तक वह उस कर्तव्य को नहीं कर लेते तब तक इस भू मंडल में रहते हैं और जब उनका कर्तव्य हो पूरा हो जाता है तो या तो दूसरे लोक या मंडल में चले जाते हैं या अपने लोक को लोट जाते हैं। मैं किसी विशेष कारण से यहां प्रकट हुआ हूँ और तू भी इसी निमित्त आई है। मैं नर हूँ तू नारी है। मैं नर लीला करना चाहता हूं। और तेरी सहायता चाहता हूँ। तू कुछ दिनों के लिए अग्नि में प्रवेश करजा और तेरी छाया मात्र इस देह में रहे।'

यह कह कर राम ने अग्नि जलाई और सीता उस अ
में प्रवेश कर गई। वह केवल छाया ही छाया रह गई और
राम चित्त में प्रसन्न हुए।

यह अग्नि उनके अन्तर की योगाग्नि थी और पृथ्वी की
अग्नि बहाना मात्र थी।

राम का यह रहस्य लक्ष्मण पर भी प्रकट नहीं हुआ;
क्यों कि वह वहां नहीं थे और राम यह नहीं चाहते थे कि
वह इसे जानें।

तीसरा समुल्लास

सोने का हिरण

सबेरा हुआ रावण उठा और मारीच के घर गया।
वह पहिले कभी वहां नहीं गया था। उसे बड़ा आश्चर्य
हुआ। नमस्कार करके आसन दिया, कुशल पूंछी। रावण ने
उत्तर दिया—'राम ने मेरी बहिन सूर्पनखा की नाक कटवाई।
मैं उनसे अपमान का बदला लेना चाहता हूँ तू अपनी माया से
सोने का हिरन बनकर राम की कुटी में जा, सीता तुझे देख
कर लालच करेगी, राम तेरे मारने के लिए उठेंगे, चौकड़ी
मारते हुए उन्हें दूर ले जाना और सीता को हरलाऊँगा।'

मारीच ने कहा—'सुन रावण! यह राम लक्ष्मण साधा-
रण मनुष्य नहीं है कहा जाता है कि राम ब्रह्म के अवतार
हैं जब यह विश्वामित्र के यज्ञ की रखवाली के लिये आये
मैं ऋषि का यज्ञ विध्वंस करने चला। साथ में ताड़िका थी।
वह लक्ष्मण के बाण से मारी गई। राम के बाण ने मुझे कई
योजन की दूरी पर फेंक दिया और इन दोनों भाइयों का रूप
अब तक मेरी आंखों में नाचता है। जो लड़के ताड़का और
सुबाहु के मारने का बल रखते हैं और खरदूषण, त्रिसरा को

सहज में मार खिपाते हैं, वह मनुष्य नहीं हो सकते। तू राम के साथ बैर न कर। इसमें भलाई नहीं होगी।'

रावण को क्रोध हुआ—'मैं तुमसे मंत्र लेने नहीं आया जो गुरु बन कर उपदेश देने लगा है। तू मेरी प्रजा है। मैं आज्ञा देता हूँ कि या तो मेरा कहना मान और या मैं इसी समय तुझे प्राणहत करूंगा बोल क्या चाहता है?

मारीच ने मन में विचारा—'यह पाजी मुझे बिना मारे हुए न छोड़ेगा। इससे तो यही अच्छा है कि मैं राम के बाण से मारा जाऊँ अंत समय वह मेरे पीछे धनुष बाण लेकर दौड़ते फिरेंगे, मैं उनका दर्शन पाऊँगा और मेरी सद्गति होगी।'

इसने रावण से कहा—'बहुत अच्छा! तू जो कुछ कहता है मैं वही करूंगा।'

मारीच ने अपनी मानसिक शक्ति से हिरण का रूप बनाया चौकड़ियां भरता हुआ पंचवटी के झोंपड़े के निकट जाकर चरने लगा। इसका रूप सुहाना और सुन्दर था। पीठ पर सोने की धारियां पड़ी थीं। सीता की दृष्टि इस पर पड़ी। राम ने कहा—'इस हिरण को मार दो। इसकी मृग छाला बहुत अच्छी बनेगी।'

राम धनुष बाण लेकर उठे। उन्हें देखकर मृग भागा। वह आगे आगे, यह पीछे पीछे।

कभी उछला कभी कूदा, कभी भागा कभी चमका।
कभी दौड़ा तो उनके सामने, धवरा के आ धमका॥
उधर से वह इधर आया, इधर से फिर उधर आया।
कभी था धूप में और था, कभी वह पेड़ की छाया॥
हिरन क्या था छला वह था, दिया चकमा वह घबराये।
कभी वह दूर भागा, कभी इनके समीप आये॥

हिरण राम को घुमाते फिराते कोसों की दूरी पर ले गया। इन्होंने भी इसका पीछा नहीं छोड़ा। वह दौड़ते दौड़ते थक गया राम ने इसी समय अपना बाण सर किया। यह घायल होकर गिरा। 'हाय लक्ष्मण ! हाय अक्ष्मण !' करके पुकारा और फिर राम के रूप पर अपनी दृष्टि जमाली। ऋषि मुनि जप तप और ध्यान करते करते मर जाते हैं और राम उनके ध्यान में नहीं आते।

यहां एक कपटी और छली राक्षप के सामने आकर वह खड़े हो गये। मरते समय उसने अपना रूप धारण किया।

राम जानते थे कि यह राक्षस है। इसमें उनकी भक्ति थी। 'अन्त मती सो गति।' जिसे राम का दर्शन मिला, उसकी दुर्गति क्यों और कैसे होने लगी ! इसकी सद्गति हो गयी और वह प्राण त्यागते ही राम के धाम को चला गया।

नोट – अभी मनुष्य अपनी प्राकृतिक सामिग्री और अपनी बुद्धि की सहायता से नाना प्रकार की कलें बनाता है। समुद्र की छाती पर उन्हें दौड़ाता है। उसके हवाई जहाज आकाश मण्डल में फिरते फिराते हैं। यह बाहर मुखी साइंस है। एक समय आने वाला है जब वह अंतर मुखी साइंस या अपनी मानसिक विद्या से जैसा चाहेगा रूप बनायेगा और जहांचाहेगा ध्यान करते हुए पहुंच जायगा। जो चाहेगा करेगा। यह और कुछ न होंगी उसकी मानसिक शक्तियां होंगी। इनके नाम १—महिमा, २—अणिमा, ३—लघिमा, ४—गरिमा आदि हैं। लंका की प्राचीन सभ्यता में यह शक्तियां राक्षसों को प्राप्त थीं। पहिले भी ऐसा ही हो चुका है। कुछ दिनों पीछे फिर ऐसा होगा। यह आश्चर्य जनक बात नहीं है। केवल मानसिक विद्या की क्रिया शक्ति के साधन से सम्भव है।

'मनुष्य बनो' के नियम

ारिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-
से प्रचार करना और प्रेम,सभ्यता,आदर, शिष्टाचार,सदाचार
शीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है।
य बनना और बनाना

महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल,सुबोध और
ारण भाषा में प्रचार करना।

माजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान
ा जायेगा।

ी धर्म पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लख नहीं छापे
गे।

पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।
ों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक
होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

कों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ
य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये
पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य
·०० है।

किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने
डाकखाने से पूछताछ करके वहाँ से जो उत्तर मिले व अगला
क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही
री प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि
मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना
पता साफ-साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

Regd. No. L-ALG—28

पुस्तकें

हमारे यहां

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज

कृत

हिन्दी की आध्यात्मिक, धार्मिक, स्त्री उपयोगी, स्वास्थ्य व मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें तथा 'शाही' और 'मोती' सिलसिले के उपन्यास तथा परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज कृत उच्च कोटि की अमूल्य पुस्तकें मिलती हैं।

पूरा सूचीपत्र मंगायें।

डाक खर्च सब का अलग है।

पुस्तकें रजिस्टर्ड डाक या रेल से भेजी जाती हैं।

मिलने का पता :—

कार्यालय

मनुष्य बनो

शिव भवन, लेखराजनगर,

अलीगढ़ (उ० प्र०)

ग्राहक सं०

श्री

अ० स० सम्पादक— महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक

व्यवस्थापक व प्रकाशक—

श्रीमती सुधा मीतल

शिव भवन, लेखराज नगर

Printed by S. Mittal, Data Dayal Printers, Aligarh